International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-02-2023, Accepted: 09-03-2023, Published: 24-03-2023
Volume 9, Issue 2, 2023, Page No. 16-19

यशपाल की समाजवादी चेतना का स्वरूप

नेत्ताकुप्पम श्रीनिवासुल
शोध छात्र, हिंदी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरूपति, आंध्र प्रदेश, भारत

सारांश
इस लेख में यशपाल का परिचय देते हुए समाजवादी चेतना का अर्थ और परिभाषा दी गई है। भारतीय साहित्य के इतिहास में यशपाल जैसे प्रखर चिन्तक और क्रान्तिचेत्ता बिरले हैं। यशपाल का रचना संसार अत्यन्त विस्तृत है। उसमें से वर्तमान शोध के लिए केवल उनके कथा साहित्य को आधार बनाया गया है जिसके विस्तृत अध्ययन द्वारा यशपाल जी के प्रखर समाजवादी चिन्तक व्यक्तित्व को उद्घाटित किया जा सके। साहित्यिक रचनाओं में सामयिक चेतना ढूँढ़ना जो अतीत बन गया है। साहित्य में सामयिक चेतना ढूँढ़ने का अभिप्राय है लेखक के साथ–साथ लेखन प्रक्रिया के समय में जी लेना। अगर लेखकीय दृष्टि को समझना ही इसका तात्पर्य है तो साथ जीकर उसे समझने में शायद वह तटस्थ भाव नहीं आ सकता जो वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया में अभिप्रेत होता है। वैसे साहित्य में सामाजिक चेतना ढूँढना साहित्य को साहित्येत्तर दृष्टि से देखना है परन्तु अन्य ज्ञानशाखाओं के मापदण्डों को विशेष दृ ज्ञानक्षेत्र की प्रविधि पर लागू करने से कुछ विशेष पल्ले पड़ सकता है। सामयिक, राजनैतिक, सामाजिक, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की चेतना में आर्थिक आयाम का स्थान अनुशांगिक रहा है। इसलिए उसके महत्व का प्रतिपादन यथावश्यक रूप में किया गया है। भारतीय साहित्य के इतिहास में यशपाल जैसे प्रखर चिन्तक और क्रान्तिचेता बिरले हैं। यशपाल का रचना संसार अत्यन्त विस्तृत है। उसमें से वर्तमान शोध के लिए, केवल, उनके कथा साहित्य को आधार बनाया गया है, जिसके विस्तृत अध्ययन द्वारा यशपाल जी के प्रखर समाजवादी चिन्तक व्यक्तित्व को उद्घाटित किया गया है।

मूल शब्दः चेतना, यथार्थ, मार्क्सवाद, साम्यवादी, प्रगतिवादी

यशपाल जी ने हिन्दी साहित्य को कुल चालीस से भी अधिक कृतियाँ दी हैं। इनमें 33 कृतियाँ कथा–साहित्य की है। इन सभी के विस्तृत विश्लेषण द्वारा लेखक की ऊर्जस्व चिन्तन भक्ति का प्रकाशन हो सकेगा। अभी तक यशपाल जी की कथाकृतियों का समग्र दृष्टि से अध्ययन नहीं किया गया है। यशपाल जी प्रेमचन्दोत्तर युग के सर्वाधिक समर्थ समाजवादी कथाकार हैं। हिन्दी कथा साहित्य की एक दिशा व्यष्टि चिन्तन से प्रेरित हैं तो दूसरी समष्टि चिन्तन से अनुप्राणित है। प्रेमचन्द और यशपाल दोनों को समष्टि चिन्तन की परम्परा से जोड़ा जा सकता है। यशपाल जी के साहित्य में निरन्तर वह प्रवाहमान प्राणदायिनी शक्ति दृष्टिगोचर परमावश्यक है। यशपाल जी के कथा साहित्य की रोमानी व प्रकृत यथार्थवादी प्रवृत्तियों ने इनकी सम्पूर्णता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। इस मत से सहमत भी हुआ जा सकता है, असहमत भी।

सम्पूर्णता व्यक्ति सापेक्ष भी होती है और समाज सापेक्ष भी यथार्थ जीवन की कोई ऐसी सम्पूर्णता नहीं है जिसे प्रबुद्ध विचारकों की चुनौती का लक्ष्य न बनना पड़ा हो, जिस पर प्रश्नचिन्ह न लगे हो, जिसे संशय ने न निगला हो। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के समष्टि चिन्तक रचनाकारों का निष्पक्ष मूल्यांकन किया जाये तो यशपाल जी को प्रथम पंक्ति के अग्रणी साहित्यकारों की श्रेणी में सम्मानपूर्वक बिठाया जा सकता है। हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ को सर्वाधिक महत्व एवं प्रश्रय यशपाल जी का कथा साहित्य देता है। एक युग प्रवर्तक साहित्यकार के रूप में यशपाल जी का महत्व चिरस्थायी रहेगा। इनका एक ही उपन्यास "झूठा सच" इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। यशपाल जी के इस उपन्यास को "हिन्दी के प्रमुख दस उपन्यास में एक", "सर्वश्रेष्ठ रचना", "साहित्य की अमरनिधि", "विश्वसाहित्य के सर्वोत्तम उपन्यासों में एक", "भारतीय उपन्यास लेखकों के लिए आदर्श", "विक्टर ह्यूगो और ताल्स्ताय की रचनाओं से महत्तर", "विश्व के श्रेष्ठ उपन्यासों से तुलनीय आदि प्रशंसात्मक उपाधियाँ दी गयी हैं। आजकल चल रहे उत्तर आधुनिकतावादी स्त्री विमर्श की दृष्टि से इनका "दिव्या" उपन्यास सराहनीय है। इनकी काल्पनिक ऐतिहासिक कथा–"कम्मणा बह्मणो होदि बौद्ध सिद्धान्त का स्पष्ट निरूपण है। प्राचीन बौद्धकालीन नारी की दशा का ज्वलंत लेख, जो यह है ही।

भारतीय साहित्य के इतिहास में यशपाल जैसे प्रखर चिन्तक और क्रान्तिचेत्ता बिरले हैं। यशपाल का रचना संसार अत्यन्त विस्तृत है। उसमें से वर्तमान शोध के लिए केवल उनके कथा साहित्य को आधार बनाया गया है जिसके विस्तृत अध्ययन द्वारा यशपाल जी के प्रखर समाजवादी चिन्तक व्यक्तित्व को उद्घाटित किया जा सके। साहित्यिक रचनाओं में सामयिक चेतना ढूँढ़ना जो अतीत बन गया है।

जिस लेखक के मस्तिष्क और मन के माध्यम से गुजरकर कोई प्रत्यक्ष से मिलती–जुलती घटना साहित्य बनकर सामने आती है तो उसका वह रूप नहीं होता जो ऐन घटित होने समय होता है। दूसरे अर्थ में साहित्य में सामयिक चेतना ढूँढ़ने का अभिप्राय है लेखक के साथ–साथ लेखन प्रक्रिया के समय में जी लेना। अगर लेखकीय दृष्टि को समझना ही इसका तात्पर्य है तो साथ जीकर उसे समझने में शायद वह तटस्थ भाव नहीं आ सकता जो वैज्ञानिक अनुसंधान प्रक्रिया में अभिप्रेत होता है। वैसे साहित्य में सामाजिक चेतना ढूँढना साहित्य को साहित्येत्तर दृष्टि से देखना है परन्तु अन्य ज्ञानशाखाओं के मापदण्डों को विशेष–ज्ञानक्षेत्र की प्रविधि पर लागू करने से कुछ विशेष पल्ले पड़ सकता है। अन्तर्विद्याशाखागत अध्ययन आज के अनुसंधान की विशेषता है। यह बात अब निरपवाद रूप में स्वीकार है कि लेखक हमेशा नवीकृत होते रहना चाहता है और नवीन देने की उसकी इच्छा ही उसे लेखन प्रक्रिया में प्रवृत्त करती है। अतः जो घटनाएँ सर्वविदित हैं वे साहित्य में आकर नवीन किस तरह बनती हैं? या उन्हीं घटनाओं को अतीत में– इतिहास के ग्रन्थों में ढूंढने के बजाय साहित्य में क्यों ढूंढा जाता है, या क्यों ढूँढ़ा जाय? इस प्रश्न के उत्तर ही या समाधान की भी दो दिशाएँ हो सकती हैं–

1. वे घटनाएँ यद्यपि अतीत बनी हैं फिर भी इतिहास बनने लायक पुरानी नहीं हुई हैं या दूसरे अर्थ में स्वयं लेखक जैसे लोगों के लिए अभी वे भूतकाल नहीं है।

2. माना भी कि वे घटनाएँ अतीत की हैं फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से किया गया अंकन उन बिन्दुओं को शायद खो देता है जो मानवीय स्तर पर महत्व के होते हैं। अतः केवल घटनाओं में पाठकीय रूचि न होने से वह उन घटनाओं के पीछे के मानव को ढूँढ़ना या समझना चाहती हैं। यह भी सर्वस्वीकृत है कि इस प्रकार के "मिसिंग एलीमेन्ट्स' को ढूँढ़ने में साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। अर्थात् वह योगदान साहित्य का न होकर का? ही होता है। अभिप्राय है कि दोनों दिशायें इस बिन्दु पर आकर एक हो जाती हैं।

अतीत की जिन घटनाओं के भविष्य कालीन परिणाम स्पष्ट हो चुके हैं उन घटनाओं को दुबारा अतीत में ले जाकर फिर से घटित होते अंकित करना और उनकी सम्भावनाओं को यूँ अंकित करना कि मानों भविष्य की घटनाओं का "थोक अंदाज करना लेखकीय युक्ति हैं या लेखक को प्राप्त सुविधा है। इस सुविधा की उपलब्धि के लिए इस बात की कतई आवश्यकता नहीं कि लेखक ने उस अतीत को भुक्ता हो।

समय बहुआयामी होता है, अर्थात् विशिष्ट समय में घटित घटनायें, अन्वय, अर्थ, कारण आदि अलग–अलग दृष्टियों से देखने पर जब वर्तमान में ही अलग–अलग होती हैं तब अतीत बन जाने पर कारणों, अर्थों, अन्वयों में अधिक विविधता एवं दिशाओं आयामों का आ जाना भी स्वाभाविक है।

यह सर्वमान्य है कि साहित्य स्मरणजीवी है। साहित्य निर्मित सजग, प्रक्रिया होने पर "स्मरण" को अधिक महत्व आता है और लेखक के स्तर पर "सजकता" को भी महत्व प्राप्त होता है। घटना के घटित हो जाने और उसके साहित्य रूप में अंकन होने के दरम्यान लेखक के मन–मस्तिष्क में उसका स्मृति रूप में उथल–पुथल होते रहने में जो समय बीत जायेगा उसका भी अपना महत्व है।

सामयिक चेतना व्यक्ति की आन्तरिक और बाह्य प्रतिक्रियाओं की व्यक्ति की स्वगत विलक्षणताओं और सामूहिकता के प्रति होने वाली प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता है।

चेतना अपने आप में अपूर्व और संकल्पनात्मक होती है। घटित होने वाली हर घटना मानवनिर्मित घटना मनुष्य की चेतना का प्रकट रूप होती है। अतः चेतना को समझने के लिए घटना महत्वपूर्ण होती है। चेतना का बीज लघु ही हो यह स्वाभाविक है और घटनाओं का ब्योरा कल्पना के रंग से भी भर दिया जा सकता है। आवश्यक शर्त यही है कि चेतना बीज कमजोर न पड़ जाये। चेतना को जाग्रत करने और उर्ध्वगामी बनाने के लिए आँखों देखी घटनाओं का जितना महत्व होता है, उतना ही सुनी सुनाई घटनाओं का भी इस स्थिति में भी घटनाओं की काल्पनिकता के साथ विश्वसंहिता की कसौटी लगी ही रहती है।

चेतना के अंकन में वैचारिक अहं की अपेक्षा घटनाओं का अंकन अधिक महत्व का होता है और इसका कारण घटनाओं के माध्यम से चेतना को समझ सकना है। घटनाओं के तथ्यात्मक होने की जाँच पड़ताल की अपेक्षा हम उन तथ्यों से चेतना के सत्य को कहाँ तक समझ पाते हैं इसी का अधिक महत्व होता है। काल्पनिक घटनाओं के रंग तथ्यात्मक न भी हों तो भी हानि नहीं परन्तु उन्हें चेतना सत्यात्मक होना चाहिए।

संक्षेप में अभिप्राय यह है कि घटनाओं का मूर्त रूप भी "अघटित" अर्थात् "अमूर्त" परन्तु हो सकने की सम्भावनाओं से युक्त होना चाहिए। इसी से चेतना के विकास का पता चलता है।

घटनाओं का कर्ता मनुष्य है परन्तु केवल घटना से, घटना–प्रेरक चेतना के सम्पूर्ण और सम्यक् दर्शन नहीं हो पाते हैं। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि प्रेरक चेतना के सभी आयामों का भी उद्घाटन हो। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्ष घटना जिस रूप में घटित हुई उसका चेतना के किस आयाम के साथ निकटवर्ती सम्बन्ध है। कई बार प्रेरक–चेतना के उद्देश्य के विपरीत प्रत्यक्ष घटना हो जाती है इस स्थिति में चेतना विरोधी चेतना की थाह लेना भी आवश्यक हो जाता है। जब यशपाल परस्पर विरोधी पड़ने वाली चेतनाओं के संघर्ष को अंकित करते हैं तब मानसिक विश्लेषण अनिवार्य सा होकर अंकित हो जाता है। मात्र इस स्वर के मनोविश्लेषण के आधार पर यशपाल पर फ्रॉयड का प्रभाव मानना असंगत होगा।

साहित्य अगर समाज के पारस्परिक सम्बन्ध को प्रतिष्ठित करने का आरम्भ वह काल है जब यशपाल ने लिखना आरम्भ किया। साहित्य को सामाजिकता से सम्बद्ध करने के प्रयास यद्यपि आधुनिक काल के आरम्भ से ही दिखाई देते हैं फिर भी सामाजिक विषयों को साहित्यिक मान्यता स्पष्टतः उत्तर द्विवेदी काल में ही प्राप्त हुई।

इस सामाजिक मान्यता की अभिव्यक्ति दो धाराओं पर हुई

1. विज्ञान का बढ़ता प्रभाव।
2. मानव केन्द्री जीवन दृष्टि।

विज्ञान निष्ठा का अपरिहार्य परिणाम भौतिकता प्रधान प्रवृत्तियों की वृद्धि के रूप में हुआ और मानव केन्द्री जीवन दृष्टि का प्रभाव व्यक्ति महात्म्य की प्रतिष्ठा के रूप में हुआ।

विज्ञान निष्ठा और मानवनिष्ठा इन्हीं दो बिन्दुओं पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को झूलना पड़ा है। बीसवीं सदी के सामाजिक परिवर्तनों के इतिहास को देखने पर यही स्पष्ट होता है कि प्रगति उन्नति और परिवर्तन के मुख्य लक्ष्य भौतिक समृद्धि और मानव स्वातंत्र्य ही रहे हैं।

सन् 1920 के बाद भारतीय समाज, राजनीति, अर्थनीति आदि को प्रभावित करने वाली मार्क्सवाद और गाँधीवाद की दो विचारधारायें समानान्तर प्रवाहित हुई। परिणाम स्पष्टतः यही हुआ कि दोनों के प्रतिबद्ध प्रचार के कारण सामाजिक आचार–विचार में द्विधापन आ गया।

भौतिकता प्रधान प्रवृत्ति के साथ–साथ विज्ञान निष्ठा का एक आयाम इतिहास चेतना भी है। अतीत और वर्तमान का गहरा अध्ययन विश्लेषण करने के बाद वर्तमान और आने वाले भविष्यत् काल को सुखमय बनाने के उपायों का प्रतिपादन करना इस इतिहास–चेतना का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

इतिहास के गौरवशाली अंश को प्रेरक तत्व बनाने का काम आदर्शवादी साहित्य ने काफी मात्रा में किया, परन्तु इतिहास–चेतना के रूप में इतिहास का उपयोग यथार्थवादी साहित्य में ही हुआ।

व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ–साथ मानव केन्द्री जीवन–निष्ठा का एक उपाय, आध्यात्मिक भी है। मात्र भौतिक निष्ठा विकसित होती तो उतनी द्विधा प्रवृत्तियाँ भारतीय समाज में न पनपती जितनी भौतिक और आध्यात्मिक निष्ठाओं के समानान्तर होने वाले प्रभावों के कारण पनपी। परिणामतः विज्ञान निष्ठा के भौतिकता प्रधान प्रवृत्ति को ही विज्ञान निष्ठा का पर्याय समझा गया और साम्यवादी आयाम को भुला दिया गया।

सामयिक चेतना के इन विविध आयामों को सामने रखकर यशपाल के उपन्यासों का अध्ययन नहीं हुआ था। यशपाल के उपन्यासों पर अब तक किये गये अनुसंधान में मुख्यतः शिल्प, कथा साहित्य और मार्क्सवाद की दृष्टि से ही अध्ययन उपस्थित किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य सामयिक चेतना के अलक्षित पहलू को उपस्थित करने की दृष्टि से ही आरम्भ किया गया था। प्रगतिवादी साहित्य चिन्तन में साहित्य की प्रेरक शक्ति के रूप में सामाजिकता का योगदान रेखांकित किया जाता रहा है। "सामाजिक का अभिप्राय मात्र बाह्य रूप में समाज के प्रति प्रतिबद्ध होना नहीं किया जा सकता। सामाजिक आवर्तनों–प्रत्यावर्तनों के मंथन से प्रकट होने वाला मानव प्रवृत्तियों का बोध साहित्य के रूप में रूपायित होता है। सामाजिक बोध की कसौटी पर खरा उतरने वाला साहित्य, श्रेष्ठ साहित्य है। इस

सामाजिक बोध में अगर क्रान्तिनिष्ठा निहित हो तो ऐसा साहित्य श्रेष्ठतम साहित्य है। गतिमान सामाजिक यथार्थ को इस निष्ठा और बोध के साथ यशपाल अपने उपन्यासों में अंकित करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य होने से अपने लक्ष्य के सभी आयामों से यशपाल परिचित थे। सामायिक परिवर्तन की एक निश्चित प्रक्रिया है, उत्क्रान्ति है, क्रान्ति नहीं इसका भाव यशपाल को 'दादा कॉमरेड से रहा है और "मेरी तेरी उसकी बात एक बराबर रहा है। ऐकांतिक व्यक्तिवाद से क्रान्ति असंभव है और परिणाम में होने वाली विफलता से बचने के लिए हरीश से लेकर अमर तक के दूसरे पात्र प्रयत्नशील हैं।

हमें यह स्वीकार है कि यशपाल के साहित्य की बुनियाद मानव जीवन है। इसलिए यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक बोध से जाग्रत चेतना के साथ कलात्मक चेतना के भी दर्शन होते हैं। यशपाल का प्रयत्न विशिष्ट वर्ग से बँधे न रहने का है इसलिए अपने चित्र में और प्रतिपादन में वे हमेशा वर्गोपरि रहे हैं।

समस्त उपन्यासों को पढ़ने पर प्रतीत होता है कि यशपाल समाज निरपेक्ष कला के बारे में सोच भी नहीं पाते हैं इसलिए कला की सामाजिक प्रतिबद्धता और सामाजिक साँचे में कला को ढालना जैसे विचार यशपाल के उपन्यासों के संदर्भ में अप्रांसगिक हो जाते हैं। कुल मिलाकर जिस स्वाधीनता, समानता, आत्मनिर्णय और आत्मनिर्भरता के लिए यशपाल अपनी साहित्यिक जिन्दगी में जूझते रहे हैं। उसका अभिप्राय इन बातों की चेतना को जगाने से ही किया जाना चाहिए।

अगर स्वाधीनता का मतलब आवश्यकता बोध है तो यशपाल ने बदलती आवश्यकताओं के बोध को यानि आत्मनिर्णय और स्वाधीनता की ज्योति को भारतीय मन में हमेशा प्रज्जवलित रखा है।

भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा में यह सर्वस्वीकृत सिद्धान्त है कि कलाकार का निजी अनुभव साहित्य में अंकित होते ही सामाजिक बन जाता है। यशपाल के उपन्यासों पर यह सिद्धान्त शत–प्रतिशत सकता है। लागू हो आर्थिक प्रेरणाओं को साहित्य सर्जन में महत्व देने का एक विपरीत परिणाम यह हुआ था कि सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक सम्बन्धों को चेतनात्मक सीन दिया गया और सांस्कृतिक व्यवस्था और आर्थिक व्यवस्था को समान मानकर, आर्थिक पक्ष को बहुत तूल दिया गया। आर्थिक व्यवस्था के ढह जाने पर साहित्य पतित होता है और आर्थिक व्यवस्था की उन्नत स्थिति में साहित्य भी प्रगल्भ होता है, इस तरह का विपरीत निष्कर्ष प्रतिपादित होने लगा। इस तरह साहित्य को आर्थिक व्यवस्था के पहचान की कुंजी मानना प्रगतिवादी साहित्य में अस्वीकार किया गया है। मात्र आर्थिक पहलू पर सारे साहित्य को तोल देना संकुचितता है। अतः हम पाते हैं कि यशपाल ने अपने उपन्यासों में यद्यपि जगह–जगह पर आर्थिक शोषण और दुर्व्यवस्था के दृश्य उपस्थित किये हैं तथापि वे कभी भी यह प्रभाव अंकित नहीं करते कि आर्थिक चेतना स्वतंत्र रूप में प्रतिपाद्य हैं।

व्यक्ति की लेखक की चेतना चाहे जितनी अतीन्द्रिय हो परन्तु वह जड़ और प्रत्यक्ष वस्तुओं से ही निर्मित होती है। अपनी चेतना को यशपाल ने कभी आर्थिक सिद्धान्त से बँधा नहीं रखा सामाजिक परिवर्तन के मुख्य आयामों से ही वे हमेशा सम्बद्ध रहे। उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध विषयक चेतना के उपांग रूप में ही हमेशा आर्थिक पक्ष को रखा है। यशपाल का प्रयत्न चेतना को विस्तार से अंकित करने की अपेक्षा उत्कृष्टता से अंकित करने का रहा है। यशपाल का प्रयत्न गतिमान यथार्थ को अंकित करते हुए सामूहिक प्रतिनिधित्व का नमूना प्रस्तुत करने का रहा है, सामयिकता के गुण–दोषों का अंकन मात्र नहीं है। गतिमान यथार्थ का यशपाल ने विस्तार से वर्णन किया है। यथार्थ की छोटी–मोटी घटनाओं और व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के चलते घात–प्रतिघात से उत्पन्न नवीन घटनाओं का अंकन करना यशपाल की रचना प्रक्रिया रही है।

इन घटनाओं के सम्बन्ध में जितनी आवश्यक है, उतनी ही आर्थिक बातें यशपाल उठाते हैं। सतत् परिवर्तनशील समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र उन्होंने गढ़े है। साथ ही ये पात्र विकासशील हैं। मात्र आर्थिक पहलू से बद्ध नहीं है। व्यक्ति विकास के अंकन में यशपाल को हमेशा पात्र के अपने सामाजिक अस्तित्व का अहसास समग्रतः रहा है। ये पात्र कभी आर्थिक पहलू से चिपके नहीं हैं। कुल मिलाकर यशपाल विकासोन्मुख मानव इतिहास की गाथा अंकित करते हैं।

यशपाल के जीवन में अंकित जीवन बँधे घाट के पानी जैसा नहीं है, सतत् प्रवाहमान नदी की तरह गतिमान है यशपाल ने अपने उपन्यासों में इस जीवन प्रवाह की दिशाओं और मोड़ों को देख–परख कर अंकित किया है। इसीलिए प्रेमचन्द के बाद के प्रमुख उपन्यासकारों की अग्रिम पंक्ति में आपका स्थान है। सामाजिक संघर्षों और संकटों को अंकित करने वाला साहित्य अपने आप आकर्षक हो जाता है। सामाजिक परिवर्तनों के आवर्ती–प्रत्यावर्तो के माध्यम में, साहित्य में समाज जीवन ही अंकित होता है। इन आवत–प्रत्यावतों में राजनीति, समाजनीति, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की विशिष्ट नीति का जो महत्व है वह अर्थनीति का नहीं। इसलिए यशपाल ने उपन्यासों में आर्थिक चेतना को अलग से महत्वपूर्ण मानकर अंकित किया है।

साहित्य की प्रतिबद्धता व्यापक दृष्टि से सामाजिक और राजनैतिक सिद्धान्तों से मानी जा सकती है राजनीति के कारण समाजनीति निर्धारित होती है अथवा समाजनीति के कारण राजनीति यह विवाद बहुत पुराना है। परन्तु जिस जीवन के साथ साहित्य प्रतिबद्ध है उस जीवन के ये दो पक्ष निश्चित हैं। आर्थिक परिस्थितियाँ इन्हीं दो नीतियों के प्रभाव में बदलती रहती हैं। यशपाल प्रमुखता इन्हीं दो तत्वों को देते हैं। इसलिए राजनैतिक चेतना और सामाजिक चेतना का विचार करते हुए उन्होंने आर्थिक चेतना के वैशिष्टियों को भी रेखांकित किया है।

संकुचित मार्क्सवाद और मार्क्सवाद में उपयुक्त भेद न कर पाने पर मार्क्सवाद का गलत अभिप्राय किया जाता है। ऐसी भ्रांतियों में से एक भ्रांति यह भी है कि मार्क्सवाद यानि अर्थवाद मार्क्सवाद जीवन की तह तक पहुँचने वाले विचार के रूप में स्वीकृत है। जीवन को अपनी शक्ति से मोड़ देने वाले धक्कों को मार्क्सवाद नकारता नहीं अपितु इनका सम्यक् विवेचन करता है। चेतना के महावस्त्र की बुनावट में अर्थगत् विचार का अनन्य महत्व नहीं है। राजनैतिक में जो शक्ति है वह आर्थिक चेतना में नहीं क्योंकि यशपाल की मान्यता है कि शोषण के तौर तरीकों में आर्थिक शोषण का अपना एक आयाम है और चूँकि राजनैतिक स्वाधीनता में आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त होता है अस्तु राजनीति में शोषण के सारे उपाय कुंठित किए जा सकते हैं। इसलिए यशपाल को समाप्त करना चाहते हैं, आर्थिक शोषण को नहीं।

पूँजीवाद संसार की निरर्थक आशाओं को समाप्त करना और प्रस्थापितों के भावनावत् समर्थन पर प्रश्नचिन्ह लगाना यशपाल की उपन्यास रचना का उद्देश्य है। वे आर्थिक आयाम को स्वतंत्र रूप में या विशेष रूप में अगर अंकित करते तो उन्हें मार्क्सवाद के सही रूप को न समझने की आपत्ति को झेलना पड़ता है और यशपाल पर यह आपत्ति कभी भी नहीं की जा सकती कि यशपाल मार्क्सवाद समझने में असफल रहे हैं।

यशपाल ने अपने उपन्यासों में स्थिर नहीं बल्कि गतिशील समाज का चित्रण किया है जिससे यशपाल के उपन्यास समाजोन्मुख बन पाए हैं। यशपाल के उपन्यासों में अंकित सामाजिक चेतना के विश्लेषण के बाद स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक प्रेरणाओं और सामयिक चेतना में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता और न ही दोनों को आमने–सामने रखकर प्रभाव की दृष्टि से तोला जा सकता है।

यशपाल ने आर्थिक रूप में आत्मनिर्भरता की बात का प्रतिपादन अधिकतर स्त्रियों के पक्ष में किया है। समानता के तत्व को आर्थिक निर्भरता के कारण शक्ति मिलती है।

आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद स्त्री भोग्या बनी रहती हैं इसके लिए यशपाल भी आखिर स्त्री की बदकिस्मती जैसे विचार पर आ जाते हैं। यशपाल वैधानिक और तटस्थ दृष्टि से आर्थिक चेतना के विक्रासक्रम को अंकित नहीं करते। आत्मनिर्णय के अधिकार के एक आयाम के रूप में ही आर्थिक चेतना यत्र–तत्र उभरती है। आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए आवश्यक है राजनैतिक चेतना का जागरण आर्थिक विषमता और शोषण के चित्रण का सवाल जितना मजदूरों के संदर्भ में उचित है उतना नारी शोषण के संदर्भ में नहीं जहाँ नारी का शोषण मुख्यतः नारीत्व के कारण होता है वहाँ यशपाल ने उसके आर्थिक शोषण को गौणता दी है। जहाँ पुरुषों के आर्थिक शोषण का सवाल था वहाँ यशपाल ने उनकी सामाजिक स्थिति, शिक्षा–दीक्षा जैसी बातों का महत्व प्रतिपादित किया है। नारी शोषण की तुलना में पुरुष शोषण के ऐसे स्थानों और प्रसंगों की कमी है।

अतः हमने, जहाँ आवश्यक लगा आर्थिक चेतना का विवेचन किया है जैसे सामाजिक चेतना अध्याय में 'चेतना' के आर्थिक "आधार" का विवेचन है। सामाजिक चेतना के अन्तर्गत "सामाजिक समस्या यानि आर्थिक समस्या उपशीर्षक से आर्थिक चेतना के प्रभाव को रेखांकित किया है। जीवन को सुखमय बनाने वाले साधनों का स्वामित्व'", "दरिद्रों की बीमारी का इलाज उपशीर्षकों से भी आर्थिक आयाम को उद्घोटित किया है। राजनैतिक चेतना अध्याय में राजनैतिक और आर्थिक स्वाधीनता "युद्ध" के आर्थिक परिणाम और 'पूँजीवाद', 'राष्ट्रीय संकट और पूँजीपतियों का दृष्टिकोण उपशीर्षकों में भी सामयिक चेतना के आर्थिक आयामों का विवेचन किया गया है। स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की चेतना के अन्तर्गत भी क्या आर्थिक निर्भरता ने नारी मुक्ति है।" उपशीर्षक से स्त्री– शोषण में आर्थिक चेतना के स्थान का विवेचन हैं।

यशपाल "दादा कामरेड' 'देशद्रोही' में श्रमिकों मजदूरों की समस्याओं का संकेत अवश्य करते हैं, परन्तु उन समस्याओं को न उपन्यास की केन्द्रीय समस्या और न मुख्य उद्देश्य कहा जा सकता है। इसी तरह "दिव्या" और "अमिता' में दासप्रथा और शोषण प्रक्रिया की आर्थिक समस्या को उद्घाटित करना चाहिये। यशपाल ने नारी शोषण के जितने नवीन आयामों का प्रतिपादन किया है उतना आर्थिक शोषण का नहीं। मार्क्सवादी विचारधारा से अलग या उसमें नवीन विचार जोड़ने वाला कोई आयाम उद्घाटित किये जाने से भी आर्थिक चेतना का स्वतंत्र विवेचन करना अनावश्यक लगा।

स्पष्ट है कि सामयिक, राजनैतिक, सामाजिक, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की चेतना में आर्थिक आयाम का स्थान अनुशांगिक रहा है। इसलिए उसके महत्व का प्रतिपादन यथावश्यक रूप में किया गया है। भारतीय साहित्य के इतिहास में यशपाल जैसे प्रखर चिन्तक और क्रान्तिचेता बिरले हैं। यशपाल का रचना संसार अत्यन्त विस्तृत है। उसमें से वर्तमान शोध के लिए, केवल, उनके कथा साहित्य को आधार बनाया गया है, जिसके विस्तृत अध्ययन द्वारा यशपाल जी के प्रखर समाजवादी चिन्तक व्यक्तित्व को उद्घाटित किया गया है।

संदर्भ

1. यथार्थवाद और उसकी समस्याएं–यशपाल–लोकभारती प्रकाशन–प्रथम संस्करण–2015
2. समाजवादी यथार्थवाद और हिंदी कथा साहित्य–डॉ. प्रेमलता जैन–नवचेतन प्रकाशन–संस्करण–2004
3. यशपाल रचना संचयन–मधुरेश–साहित्य अकादमी–प्रथम संस्करण–2006
4. उत्तर यथार्थवाद–सुधीश पचौरी–वाणी प्रकाशन–संस्करण–2004